शिवोपासना खण्ड

देवपूजा – प्रकरण

(पूजा – संबंधी जाननेयोग्य कुछ बातें)

इस खण्ड के प्रारंभ में सबसे पहले हम देवपूजा – संबंधी कुछ सामान्य बातों की चर्चा करेंगे। तदनन्तर ही शिवोपासना – संबंधी विचार प्रस्तुत करेंगे ताकि हम तत्संबंधी सभी पहलुओं को अच्छी तरह समझ सकें।

सूर्य, गणेश, दुर्गा, शिव एवं विष्णु – ये पञ्चदेव कहे गये हैं। इनकी पूजा सभी कार्यों में करनी चाहिये।

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रं च केशवम्।
पञ्चदैवत्यमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्।।

(नित्यकर्म – पूजाप्रकाश, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ. 105 में मत्स्यपुराण का उद्धरण)

कल्याणकामी गृहस्थ को एक ही देव – मूर्ति की पूजा नहीं करनी चाहिये, अपितु अनेक देवों की पूजा करनी चाहिये। ऐसा करने से उसकी कामनायें पूरी होती हैं। किन्तु घर में दो शिवलिंग, दो शालग्राम, द्वारका के दो चक्र(गोमतीचक्र) तथा दो सूर्य की पूजा नहीं करनी चाहिये। इसी प्रकार तीन गणेश, तीन शक्ति तथा दो शंख का पूजन न करें। मत्स्य, कूर्म आदि दस अवतारों की (एक साथ) घर में पूजा न करें। आग से जली और टूटी हुई प्रतिमा की पूजा घर में न करें। किन्तु टूटी – फूटी शालग्रामशिला पूज्य है। सम शालग्रामशिला की पूजा होती है, पर सम में दो की नहीं, विषम की पूजा नहीं की जाती, किन्तु विषम में एक की पूजा होती है।

गृहे लिङ्गद्वयं नार्च्यं शालग्रामद्वयं तथा।
द्वे चक्रे द्वारकायास्तु नार्च्ये सूर्यद्वयं तथा।।
शक्तित्रयं त्रिविघ्नेशं द्वौ शङ्खौ नार्चयेत्सुधीः।
नार्चयेच्च तथा मत्स्यकूर्मादिदशकं गृहे।
अग्निदग्धाश्च भग्नाश्च न पूज्याः प्रतिमा गृहे।।[1]
भग्ना वा स्फुटिता वापि शालग्रामशिला शुभा।
शालग्रामाः समाः पूज्याः समेषु द्वितयं न हि।।
विषमा नैव पूज्यन्ते विषमेष्वेक एव ही।[2]

(धर्मसिन्धुः, चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ ऑफ़िस, वाराणसी, 1968, पृ. 625 – 626)

---

1. मन्त्रमहोदधिः (22/34) में भी कहा गया है कि जली हुई, टूटी हुई, ऊपर नीचे दृष्टिवाली तथा वक्र आकृतिवाली प्रतिमा का पूजन नहीं करना चाहिये। **'पूज्यानदग्धाभिन्ना वा नोर्द्ध्वाधोदृङ् न वक्रिका।'**

2. आचारेन्दुः, आनंद आश्रम प्रकाशन, 1909, पृ. 141 तथा निर्णयसिन्धुः, दौलतराम गौड़ द्वारा संपादित एवं ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स, वाराणसी द्वारा संवत् 2027 में प्रकाशित, पृ. 685 पर भी इसी प्रकार के श्लोक पाये जाते हैं।

शालग्रामशिला की प्रतिष्ठा नहीं होती। आरंभ में उसकी महापूजा करके नित्य पूजा की जाती है। बाणलिंगों में प्रतिष्ठा, संस्कार और आवाहन नहीं होता।

शालग्रामशिलायास्तु प्रतिष्ठा नैव विद्यते।
महापूजां तु कृत्वादौ पूजयेत्तां ततो बुधः।।
बाणलिङ्गानि राजेन्द्र ख्यातानि भुवनत्रये।
न प्रतिष्ठा न संस्कारस्तेषामावाहनं तथा।।[1]

(धर्मसिन्धुः, पृ. 627 में क्रमशः स्कंद एवं भविष्यपुराण का वचन)

देवप्रतिमा सोना, चाँदी, ताँबा और मिट्टी की होती है। अथवा धातु, पाषाण, मोती, काँसा और पीतल की होती है। अँगूठे की ग्रन्थि से लेकर बारह अंगुलतक की प्रतिमा होती है। बारह अंगुल से बड़ी प्रतिमा को घर में स्थापित करना अच्छा नहीं माना जाता।

सौवर्णी राजती ताम्री मृन्मयी प्रतिमा भवेत्।
पाषाणधातुमुक्ता वा कांस्यपित्तलयोरपि।।
अङ्गुष्ठपर्वमानात्सा वितस्तिं यावदेव तु।[2]
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः।।

(धर्मसिन्धुः, पृ. 624 में थोड़े अन्तर के साथ भविष्यपुराण का वचन)

श्रीमद्भागवत में पत्थर, लकड़ी, लोहे, लेप्य, लेख्य(चित्रित), बालू(रेत), मनोमयी और मणिनिर्मित-ये आठ प्रकार की प्रतिमायें बतलायी गयी हैं।

शैली दारुमयी लौही लेप्या लेख्या च सैकती।
मनोमयी मणिमयी प्रतिमाऽष्टविधा स्मृता।।

(निर्णयसिन्धुः, ठाकुर प्रसाद एण्ड सन्स, वाराणसी संवत् 2027, पृ. 678 तथा धर्मसिन्धुः, पृ. 624 में श्रीमद्भागवत का वचन)

लोहे, सोने और महुये की लकड़ी की प्रतिमा सात से लेकर बारह अंगुलतक घर में उत्तम होती है, ऐसा देवीपुराण में कहा गया है।(धर्मसिंधुः पृ. 625)

घर में चल प्रतिष्ठा और मन्दिर में अचल प्रतिष्ठा करनी चाहिये-यह कर्मज्ञानियों और मुनियों का मत है।

गृहे चलार्चा विज्ञेया प्रासादे स्थिरसंज्ञिका।
इत्येते कथिता मार्गा मुनिभिः कर्मवादिभिः।।

(नित्यकर्म-पूजाप्रकाश, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ. 106 में लौगाक्षिभास्कर का वचन)

---

1. आचारेन्दुः, पृ. 178 में भी दूसरा श्लोक यथावत् पाया जाता है जबकि पहले श्लोक के भाव से युक्त अन्य श्लोक पाया जाता है।

2. मन्त्रमहोदधिः (22/33) में भी कहा गया है कि - '**अंगुष्ठादिवितस्त्यन्तप्रमाणा प्रतिमा गृहे।।**'

गंगाजी में, शालग्रामशिला में तथा शिवलिंग में सभी देवताओं का पूजन बिना आवाहन-विसर्जन के किया जा सकता है।

गङ्गाप्रवाहे शालग्रामशिलायां च सुरार्चने।
द्विजपुङ्गव! नापेक्ष्ये आवाहनविसर्जने।।
शिवलिङ्गेऽपि सर्वेषां देवानां पूजनं भवेत्।
सर्वलोकमये यस्माच्छिवशक्तिर्विभुः प्रभुः।। (बृहद्धर्मपुराण, मध्यख. 57/4, 59)

सब देवताओं की प्रतिष्ठा वैशाख, ज्येष्ठ और फाल्गुन में हो सकती है। किसी के मत से विष्णु को छोड़कर अन्य देवताओं की प्रतिष्ठा माघ में हो सकती है। देव-प्रतिष्ठा उत्तरायण में शुभ तथा दक्षिणायन में निन्दित कही गयी है।[1] मातृ, भैरव, वराह, नरसिंह और त्रिविक्रम की प्रतिष्ठा दक्षिणायन में भी होती है।[2] विष्णु की प्रतिष्ठा चैत्र, आश्विन, श्रावण, माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ और पौष में हो सकती है। श्रावण और भाद्रपद में शिवलिंग की स्थापना उत्तम होती है। माघ और आश्विन मास में देवीप्रतिष्ठा सब कामनाओं की देनेवाली और उत्तम होती है।(धर्मसिन्धुः पृ. 622)

अश्विनी, रोहिणी, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, श्रवण से तीन नक्षत्र और रेवती में, शनि और मंगल को छोड़कर अन्य वारों में, अमावस्या और रिक्ता को छोड़कर अन्य तिथियों में, सब देवताओं की प्रतिष्ठा शुभप्रद है। श्रवण तथा कृत्तिका आदि विशाखापर्यन्त नक्षत्रों में तथा द्वादशी तिथि में विष्णु-प्रतिष्ठा प्रशस्त होती है। चतुर्थी गणेश के लिये शुभ कही गयी है। नवमी तिथि और मूल नक्षत्र देवी के लिये शुभ हैं। तथा सब देवताओं के अपने-अपने नक्षत्र शुभ हैं। जैसे शिवजी का आर्द्रा तथा सूर्य का हस्त इत्यादि।(वही पृ. 622-623)

शिवलिंग की स्थापना के संदर्भ में 'निर्णयसिन्धुः' में कहा गया है कि यति या संन्यासी सब समय में लिंग स्थापित कर सकते हैं। परन्तु अन्य लोगों के लिये माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़- इन पाँच महीनों के शुक्लपक्ष में लिंग की स्थापना करना उत्तम है।

यतीनां सर्वकाले च लिङ्गस्यारोपणं मतम्।।
माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठाषाढेषु पञ्चसु।
मासेषु शुक्लपक्षेषु लिङ्गस्थापनमुत्तमम्।। (निर्णयसिन्धुः पृ. 673)

गृहस्थ को सामान्यरूप से सभी देवताओं की पूजा करनी चाहिये परन्तु कामनाभेद से

---

1. शैवसिद्धान्तशेखर में मुक्ति की कामनावाले व्यक्तियों के लिये दक्षिणायन को श्रेष्ठ बतलाया गया है-

श्रेष्ठोत्तरे प्रतिष्ठा स्यादयने मुक्तिमिच्छताम् ।
दक्षिणे तु मुमुक्षूणां मलमासे न सा द्वयोः ।। (धर्मसिन्धुः पृ. 622 की पादटिप्पणी)

2. वैखानस ने दक्षिणायन में उग्र देवी-देवता की प्रतिष्ठा को विहित बतलाया है-

मातृभैरववाराहनरसिंहत्रिविक्रमाः।
महिषासुरहन्त्र्यश्च स्थाप्या वै दक्षिणायने।।
(धर्मसिन्धुः पृ. 622 तथा निर्णयसिन्धुः पृ. 673)

विशिष्ट देवों की भी पूजा की जाती है। उदाहरण के लिये आरोग्य के लिये भगवान् सूर्य की तथा ज्ञान आदि के लिये भगवान् शंकर की।[1] यों तो सभी प्रमुख देवों की ईश्वरबुद्धि (न कि देवबुद्धि) से उपासना करने पर भोग एवं मोक्ष सब कुछ प्राप्त हो सकता है तथापि सतयुग में ब्रह्मा की, त्रेता में भगवान् सूर्य की, द्वापर में भगवान् विष्णु की तथा कलि में भगवान् शिव की उपासना मुख्यरूप से करनी चाहिये।

ब्रह्मा कृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान् रविः।
द्वापरे भगवान्विष्णुः कलौ देवो महेश्वरः।।

('अनुष्ठानप्रकाशः', चतुर्थी लाल शर्मा द्वारा रचित तथा वेंकटेश्वर प्रेस बम्बई द्वारा संवत् 2008 में प्रकाशित, पृ. 9)

शिवलिंग की स्थापना या प्रतिष्ठा गृहस्थ एवं संन्यासी दोनों ही कर सकते हैं (धर्मसिन्धुः पृ. 622–623)। देवताओं की पूजा प्रातःकाल, दोपहर एवं सायंकाल– तीनों समय करनी चाहिये। अगर ऐसा करना संभव न हो तो प्रातःकाल विस्तार से पूजा करें और दोपहर एवं सायंकाल को केवल पुष्पाञ्जलि अर्पित करें (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 9, वीरमित्र. पू. प्र. पृ. 3 तथा आचारेन्दुः पृ. 141)। अथवा गन्धपुष्पमात्र या केवल नैवेद्य समर्पित करें। क्योंकि गन्धपुष्पमात्र या नैवेद्यमात्र समर्पित करने से पूजा मान ली जाती है।

सर्वोपचारासंभवे गन्धपुष्पमात्रेणैव पूजा कार्येति......। (आचारेन्दुः पृ. 143)
केवलनैवेद्यसमर्पणेनैव पूजासिद्धिरिति......................।
गन्धपुष्पसमर्पणमात्रेण पूजासिद्धिरित्यपि.................। (आचारेन्दुः पृ. 194)

स्नानोपरांत शुद्ध धुले वस्त्र पहनकर देवपूजा का कार्य करें। अशक्त होने पर स्नान न कर सकने की स्थिति में गीले कपड़े से शरीर को पोंछ लें।[2] विद्वान् पुरुष धोबी के धोये वस्त्र को अशुद्ध मानते हैं। अपने हाथ से पुनः धोने पर ही वह वस्त्र शुद्ध होता है।

रजकैः क्षालितं वस्त्रमशुद्धं कवयो विदुः।
हस्तप्रक्षालनेनैव पुनर्वस्त्रं च शुद्ध्यति।। (संक्षिप्त पद्मपु., सृष्टिखण्ड 46/53)

पूजोपचार

संक्षेप और विस्तार के भेद से पूजा के अनेकों प्रकार के उपचार हैं– पाँच, दस, सोलह,

---

1. **योगो ज्ञानं यशः सिद्धिर्महादेवादवाप्यते।**
आरोग्यं साम्प्रतं पुत्रं भास्करात्प्राप्नुयात् ध्रुवम्।।
(वीरमित्रोदयः पूजाप्रकाशः, चौखम्बा संस्कृत बुक डिपो, बनारस, 1913, पृ. 5)

2. **अशिरस्कं भवेत् स्नानं स्नानाशक्तौ तु कर्मिणाम्।**
आर्द्रेण वाससा वापि मार्जनं दैहिकं विदुः।।
(वीरमित्रोदयः आह्निकप्रकाशः, चौखम्बा संस्कृत बुक डिपो, 1910, पृ. 197)

अठारह, छत्तीस, चौसठ तथा राजोपचार आदि। अलग-अलग ग्रन्थों में इन उपचारों की सूची अलग-अलग पायी जाती है। अतः जिसकी जैसी रुचि, सुविधा, साधन और सामर्थ्य हो उन-उन उपचारों के साथ देव-पूजा करनी चाहिये।

पंचोपचार के अन्तर्गत गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य आते हैं।[1] दस उपचार के अन्तर्गत पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र-निवेदन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप एवं नैवेद्य आते हैं। सोलह उपचारों में पाद्य, अर्घ्य, आचमन, स्नान, वस्त्र, आभूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, नैवेद्योत्तर आचमन, ताम्बूल, स्तवपाठ, दर्पण और नमस्कार आते हैं। अठारह उपचारों में आसन, स्वागत, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, वस्त्र, यज्ञोपवीत, भूषण, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य, दर्पण, माल्य, अनुलेपन और नमस्कार आते हैं।[2] उपचारों की ये सूचियाँ अलग-अलग ग्रन्थों में अलग-अलग पायी जाती हैं। उदाहरण के लिये-

अर्घ्यः पाद्यमाचमनं मधुपर्कासनानि च।
गन्धादिपञ्चकं चेति उपचारा दशोदिताः।। (आचारेन्दुः पृ. 143)

आसनं स्वागतं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।
मधुपर्काचमनस्नानवसनाभरणानि च।।
सुगंधिसुमनोधूपदीपनैवेद्यवन्दनम्।
प्रयोजयेदर्चनायामुपचारांश्च षोडश।।
अर्घ्यपाद्याचमनकमधुपर्काचमनान्यपि।
गन्धादयो निवेद्यान्ता उपचारा दश क्रमात्।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 9 पर 'प्रपंचसार' का वचन)

पुनः **आवाहनासनं पाद्यमर्घ्यमाचमनीयकम्।**
स्नानं वस्त्रोपवीतं च गन्धमाल्यान्यनुक्रमात्।।
धूपं दीपं च नैवेद्यं ताम्बूलं च प्रदक्षिणा।
पुष्पाञ्जलिरिति प्रोक्ता उपचारास्तु षोडश।।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 9 पर 'कर्मप्रदीप' का वचन)

आमतौर पर पञ्चोपचार और षोडशोपचार प्रसिद्ध हैं। हर प्रकार के पूजन के अन्त में साङ्गता-सिद्धि के लिये दक्षिणा भी चढ़ानी चाहिये।

फलेन सुफलावाप्तिः सांगता दक्षिणार्पणात्।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 9 तथा धर्मसिंधुः पृ. 593 की पादटिप्पणी देखें)

जैसा पहले ही बताया जा चुका है कि अगर सभी उपचारों से पूजा संभव न हो तो

1. **गन्धपुष्पे धूपदीपौ नैवेद्यं पञ्चमं स्मृतम्।** (आचारेन्दुः पृ. 143)
2. गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित 'शिवोपासनांक' पृ. 209

गन्ध एवं पुष्पमात्र से ही पूजा कर लेनी चाहिये। पूजा शुरू करने से पहले प्रतिमा पर चढ़ाया गया द्रव्य या निर्माल्य हटा कर साफ कर लिया जाना चाहिये। निर्माल्य हटाने का कार्य सूर्योदय से पूर्व कर लेना चाहिये, तदनन्तर उचित समय पर पूजा करनी चाहिये।[1] निर्माल्य को अंगूठे एवं तर्जनी के अग्रभाग से हटाना चाहिये जबकि मध्यमा एवं अनामिका के मध्य पुष्प लेकर(रखकर) पूजा करनी चाहिये।

निर्माल्यापसरणं सूर्योदयात्पूर्वमुक्तं...........। (आचारेन्दुः पृ. 143)
मध्यमानामिकामध्ये पुष्पं संगृह्य पूजयेत्।
अङ्गुष्ठतर्जन्यग्राभ्यां निर्माल्यमपनोदयेत्।।

(आचारेन्दुः पृ. 143, निर्णयसिंधुः पृ. 694 तथा धर्मसिंधुः पृ. 628)

अब हम विभिन्न उपचारों के स्वरूप पर विस्तार से चर्चा करेंगे। यहाँ पर एक बात ध्यान देने की है कि स्थिर (अचल प्रतिष्ठावाली) मूर्ति की पूजा में आवाहन एवं विसर्जन नहीं किया जाता। अस्थिर (चल प्रतिष्ठावाली) मूर्ति में विकल्प है, अर्थात् आवाहन एवं विसर्जन कर भी सकते हैं और नहीं भी। परन्तु स्थण्डिल(पूजा के निमित्त बनी वेदी या परिष्कृत भूमि) में आवाहन और विसर्जन दोनों होते हैं।

उद्वासावाहने न स्तः स्थिरायामुद्धवार्चने।
अस्थिरायां विकल्पः स्यात्स्थण्डिले तु भवेद् द्वयम्।।

(धर्मसिंधुः पृ. 574 में श्रीमद्भागवत का वचन)

पूजा की वस्तुओं(उपचारों) को स्वयं लाकर जो व्यक्ति तन्मय भाव से इष्टदेव का पूजन करता है वह पूजन का पूरा फल प्राप्त करता है। अन्य व्यक्तियों द्वारा दिये गये साधनों से पूजा करने पर आधा फल मिलता है। इसलिये पूजा की सभी वस्तुओं को स्वयं ही जुटा कर पूजा करनी चाहिये।(मन्त्रमहोदधि: 22/177-178)

आसन

आसन सात प्रकार के हो सकते हैं- पुष्प, लकड़ी, वस्त्र, चर्म, कुश, धातु एवं पाषाण के (आचारेन्दुः पृ. 145)। पुष्प एवं कुश के सूत्र की मदद से निर्मित आसन में निर्गन्ध पुष्पों जैसे अहिफेन आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिये। यज्ञ में प्रयुक्त होनेवाली लकड़ियों से बनाया गया आसन अति विस्तृत न हो और वह देखने में सुन्दर हो[2]। आसन पूर्णतया कुश से भी निर्मित हो सकता है। धातु के आसन बनाते समय शीशा, काँसा और लोहे का प्रयोग न करें। तांबा, सोना, चाँदी इत्यादि का प्रयोग हो सकता है (आचारेन्दुः पृ. 145)।

रत्नों से निर्मित आसन शिलाओं से निर्मित आसनों से अच्छा होता है। उन फूलों के

1. धर्मसिन्धुः पृ. 574
2. यज्ञ में प्रयुक्त होनेवाली लकड़ी का ही आसन बनाना चाहिये।

निर्मित आसन श्रेष्ठ होते हैं जो देवताविशेष को प्रिय हैं। लकड़ी के आसनों में चन्दन, वस्त्रों के आसन में कम्बल, चर्मासनों में शाम्बर तथा धातु में सोने का आसन श्रेष्ठ होता है। अन्तर्वेदी में कुशासन श्रेष्ठ होता है।

पौष्पेषु तत्तद्देवस्य प्रीतिदैः कुसुमैर्वरम्।।
दारवे चान्दनं श्रेष्ठं वास्त्रे काम्बलमुत्तमम्।
चार्मणे शाम्बरं शस्तं तैजसेषु हिरण्मयम्।।
शैले रत्नभवं श्रेष्ठमन्तर्वेदिभवं कुशे। (आचारेन्दुः पृ. 146)

लकड़ी का आसन 24 अंगुल का, वस्त्र का तीन हाथ का, चर्मासन अपनी रुचि के प्रमाण का होना चाहिये (आचारेन्दुः पृ. 146)। आसन समर्पण में आसन के ऊपर पाँच फूल भी रख लेने चाहिये। आसन देने के बाद देवता का स्वागत छः पुष्पों से करना चाहिये।

पाद्य

पाद्य-पात्र में चार पल जल लेकर उसमें पाद्यद्रव्यों को मिला लेना चाहिये। पाद्यद्रव्य निम्नलिखित हैं- श्यामा घास, कमल, अपराजिता और दूब।

पद्मं च विष्णुपर्णीं (विष्णु क्रान्तं) च दूर्वां श्यामाकमेव च।
चत्वारि पाद्यद्रव्याणि लब्धं वाऽपि समाचरेत्।।

(वीरमित्रोदयः पूजाप्रकाशः पृ. 33 तथा आचारेन्दुः पृ. 146 में रत्नकोश का वचन)

'अनुष्ठानप्रकाशः' में 'शारदातिलक' का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि-

दूर्वां च विष्णुक्रान्तां च श्यामाकं पद्ममेव च।
पाद्याङ्गानि च चत्वारि कथितानि समासतः।।[1] (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 10)

पाद्य को धातु के पात्र अथवा शंख में रखकर सभी देवों को अर्पित करना चाहिये, परन्तु सूर्य (एवं शिवजी) को शंख में रख कर नहीं देवें। सोने आदि धातु तथा उदुम्बर आदि लकड़ी के पात्राभाव में पलाश (ढाक) या कमल के पत्ते में रखकर पाद्य को समर्पित किया जा सकता है। सभी वस्तुओं के अभाव में अर्घ्यपात्र से ही पाद्य को निवेदन करें।

तत्तैजसपात्रेण सर्वेभ्यो देयं सूर्येतरेभ्यः शङ्खेन वेति।
हेमरूप्योदुम्बराब्जरीतिदारुसमुद्भवम्।
पालाशं पद्मपत्रं वा स्मृतं पाद्यादिभाजनम्।।
अशक्तावर्घ्यपात्रेण पाद्यादीनि निवेदयेत्।

(आचारेन्दुः पृ. 146-147 तथा मन्त्रमहोदधिः 22/19-20)

पाद्य की वस्तुओं के अभाव में केवल जल का भी प्रयोग हो सकता है। (आचारेन्दुः पृ. 146)

---

1. मन्त्रमहोदधिः (22/60) में भी कहा गया है कि पाद्य के जल में उक्त चारों पदार्थों को मिला देना चाहिये।
श्यामाकविष्णुक्रान्ताब्जदूर्वाः पाद्यजले क्षिपेत्।।

अर्घ्य

अर्घ्य में चार पल जल लेकर उसमें गन्ध, पुष्प, अक्षत, यव, तिल, दूब, कुशा का अग्रभाग तथा पीली सरसों मिलाना चाहिये।

गन्धपुष्पाक्षतयवकुशाग्रतिलसर्षपैः।
स दूर्वैः सर्वदेवानामर्घोऽयं परिकीर्त्तितः।।

(वीरमि. पू. प्र. पृ. 34 में आगमों का वचन तथा अनुष्ठानप्रकाश: पृ. 10 में शारदातिलक का वचन)

आचारेन्दु: में भी कहा गया है कि –

अर्घ्यपात्रे क्षिपेद्दूर्वातिलदर्भाग्रसर्षपान्।
यवपुष्पाक्षतान्गन्धं मूर्ध्नि तेनार्घ्यमाचरेत्।।

(आचारेन्दु: पृ. 147 तथा मन्त्रमहोदधि: 22/65)

अर्घ्य में प्रयुक्त उपर्युक्त द्रव्यों की सूचियाँ भिन्न – भिन्न ग्रन्थों में अलग – अलग हैं। ऊपर की सूची के द्रव्य सामान्यरूप से प्रयोग किये जाते हैं।

रत्नकोश के वचन को उद्धृत करते हुए कहा गया है कि –

कुशाक्षततिलव्रीहियवमाषप्रियङ्गुभिः।
सिद्धार्थकसमायुक्तमर्घ्यं स्यात्तु विशेषतः।।

(वीरमि. पू. प्र. पृ. 33 तथा आचारेन्दु: पृ. 147)

वीरमित्रोदय: में ही आगे कहा गया है कि –

रक्तबिल्वाक्षतैः पुष्पैर्दधिदूर्वाकुशैस्तिलैः।
सामान्यः सर्वदेवानामर्घोऽयं परिकीर्त्तितः।। (वीरमि. पू. प्र. पृ. 33)

अर्थात् – रक्त कुंकुम या रक्तचन्दन, बिल्व, अक्षत, पुष्प, दधि, दूर्वा, कुश एवं तिल सामान्यरूप से सभी देवों के लिये अर्घ्य स्वीकार किया गया है।

अष्टांग अर्घ्य की चर्चा करते हुए कहा गया है कि –

आपः क्षीरं कुशाग्राणि दधि सर्प्पिश्च तण्डुलाः।
यवाः सिद्धार्थकाश्चैव अष्टाङ्गोर्घः प्रकीर्त्तितः।। (वीरमि. पू. प्र. पृ. 34)

अर्थात् – जल, दूध, कुशा का अग्रभाग, दही, घी, तण्डुल, यव एवं पीली सरसों को अष्टांग अर्घ्य कहा गया है।

अनुष्ठानप्रकाश: (पृ. 9) में भविष्यपुराण के हवाले से कहा गया है कि जल, दूध, कुशाग्र, दही, अक्षत, तिल, जौ तथा पीली सरसों अष्टांग अर्घ्य में सम्मिलित होते हैं। इसी प्रकार व्रत – परिचय (हनुमान् शर्मा, गीताप्रेस, पृ. 24) में जल, पुष्प, कुशा का अग्रभाग, दही, अक्षत, केसर, दूर्वा और सुपारी को अष्टांग अर्घ्य कहा गया हैं।

पाद्य, अर्घ्य, एवं आचमन आदि के द्रव्यों के उपलब्ध न होने पर उन सबका मानसिक

चिन्तन कर लेना चाहिये। अथवा उन सबका स्मरण कर अक्षत का प्रयोग करना चाहिये।

अलाभे दधिदूर्वादेर्मनसापि विचिन्तयेत्। (वीरमि. पू. प्र. पृ. 33)

पाद्यादिद्रव्याभावे तु तत्स्मरन्नक्षतान्क्षिपेत्। (आचारेन्दुः पृ. 147)

भगवान् शंकर एवं सूर्य को छोड़कर अर्घ्य को शंख से देना उत्तम है।

विहाय शंकरं सूर्यमर्घ्ये शङ्खः प्रशस्यते। (आचारेन्दुः पृ. 147)

अर्घ्यपात्र सोने, रूपा या ताँबे का हो सकता है। इन धातुपात्रों के अभाव में पलाश के पत्ते का भी प्रयोग हो सकता है।(वीरमि. पू. प्र. पृ. 208)

आचमनीय

आचमनीय में छः पल जल और उसमें सामान्य रूप से जायफल, लवंग, और कंकोल का चूर्ण देना चाहिये।

जातीलवङ्गकङ्कोलैर्मतमाचमनीयकम्।[1] (आचारेन्दुः पृ. 147)

अर्घ्य के द्रव्यों की तरह आचमन के द्रव्यों में भी काफी भेद पाया जाता है। उदाहरण के लिये अनुष्ठानप्रकाशः(पृष्ठ 10) में कहा गया है कि-

कर्पूरमगुरुं पुष्पं दद्याज्जातीफलं मुने।
लवङ्गमपि कङ्कोलं शस्तमाचमनीयके।।

अर्थात्- आचमनीय में कपूर, अगरु, पुष्प, जायफल, लवंग एवं कंकोल का प्रयोग अच्छा होता है।

आचारेन्दुः में 'रत्नकोश' के हवाले से कहा गया है कि-

एलालवङ्गगोक्षीरं कंकोलं च चतुर्थकम्।
आचम्यमिति विज्ञेयं यथालाभं प्रगृह्य च।।

(आचारेन्दुः पृ. 147 तथा वीरमि. पू. प्र. पृ. 34)

यहाँ पर इलायची, लवंग, गाय का दूध तथा कंकोल मिलाने की बात कही गयी है।

स्नान, वस्त्र, यज्ञोपवीत एवं नैवेद्य के बाद भी पुनः आचमन कराना चाहिये।

स्नानवस्त्रोपवीतान्ते नैवेद्यान्तेपि तत्स्मृतम्।। (मन्त्रमहोदधिः 22/70)

मधुपर्क

पूजा के उपचारों में मधुपर्क भी आता है। अतः यहाँ मधुपर्क की भी चर्चा की जा रही है। आमतौर पर मधुपर्क दही और घी बराबर मात्रा में तथा शहद दुगनी मात्रा में मिलाने पर बनता है। इसे एक प्रस्थ की मात्रा में कांस्यपात्र में रखकर देना चाहिये।

दधिमधुघृतानि विषमभागमिलितानि मधुपर्कः।।

(गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित तथा हनुमान् शर्मा द्वारा लिखित 'व्रतपरिचय' के पृ. 19 पर कर्मप्रदीप का वचन)

1. मन्त्रमहोदधिः में भी कहा गया है कि - **लवंगजातिकङ्कोलं प्रक्षिप्याचमनीयके।।** (22/62)

मधुपर्क के द्रव्यों में भी विविधता पायी जाती है। उदाहरण के लिये 'अनुष्ठानप्रकाशः' में कहा गया है कि -

सुधाणुना (अमृतबीजेन) ततः कुर्यान्मधुपर्कं मुखाम्बुजे।
आज्यं दधिमधून्मिश्रमेतदुक्तं मनीषिभिः॥
तेनैव मनुना कुर्याददभिराचमनीयकम्॥ (पृ. 10)

आचारेन्दुः में कहा गया है कि -

दधि सर्पिर्जलं क्षौद्रं सितेत्येभिस्तु पञ्चभिः।
प्रोच्यते मधुपर्कोऽयं सर्वदेवौघतुष्टिदः॥ (पृ. 147)

अर्थात् - दही, घी, जल, मधु तथा शर्करा - ये पाँचों मिलकर मधुपर्क कहलाते हैं, जो पाप की निवृत्ति के लिये सभी देवों को देना चाहिये।

वहीं पर आगे कहा गया है कि -

जलं तु सर्वतः स्वल्पं सिता दधि घृतं समम्।
सर्वेषामधिकं क्षौद्रं मधुपर्के प्रयोजयेत्॥
दधि क्षौद्रमिति द्वाभ्यां मधुपर्कं परे जगुः। (अचारेन्दुः पृ. 148)

आचारेन्दुः में 'रत्नकोश' के हवाले से कहा गया है कि -

इक्षुर्मधु घृतं चैव पयो दधि सहैव तु।
प्रस्थप्रमाणं वा ग्राह्यं मधुपर्कमिहोच्यते॥
इह कांस्यपात्रं प्रशस्तम्। (आचारेन्दुः पृ. 148 तथा वीरमित्रोदयः पू. प्र. पृ. 34)

अर्थात् - इक्षु, मधु, घी, दूध एवं दही - इनकी एक प्रस्थ मात्रा को मधुपर्क कहते हैं। इसके लिये कांसे का पात्र उत्तम होता है।

मधुपर्क के बादवाले आचमन में केवल एक पल विशुद्ध जल ही आवश्यक होता है।

स्नान

सामान्य पूजा में स्नान के लिये पचास पल जल का विधान है। स्नान के पात्र में अक्षत, गन्ध एवं पुष्प डाल लेना चाहिये। परन्तु इनके अभाव में धोये हुये तण्डुल का प्रयोग करें।

अक्षता गन्धपुष्पाणि स्नानपात्रे तथा त्रयम्।

(आचारेन्दुः पृ. 148 में मन्त्र - तन्त्र प्रकाश का वचन)

द्रव्याभावे प्रदातव्याः क्षालितास्तण्डुलाः शुभाः॥

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 10 में मन्त्र - तन्त्र प्रकाश का वचन)

स्नान से पूर्व अभ्यंग एवं उद्वर्तन किया जाता है। अभ्यंग एवं उद्वर्तन के लिये तेल, गंध - द्रव्य, भस्म, हल्दी, जौ तथा गेहूँ के चूर्ण आदि का प्रयोग किया जाता है।[1] पहले प्रतिमा या लिंग को उपर्युक्त द्रव्यों से मालिश करने के बाद गर्म जल से स्नान करावें। **सामान्य अभिषेक या**

1. विस्तृत जानकारी के लिये आचारेन्दुः पृ. 148 देखें।

स्नान के अलावा महाभिषेक या महास्नान भी होता है। सामान्य स्नान के लिये पचास पल जल पर्याप्त होता है। शुद्ध जल से स्नान के पहले पंचामृत, पंचगव्य, नारियल के जल आदि के द्वारा स्नान कराया जाता है। परन्तु महास्नान की विधि भिन्न है जिसकी चर्चा थोड़ी देर बाद की जायगी।

स्नानवाला जल स्वच्छ, शीतल, स्वादु एवं वस्त्र से छाना हुआ तथा सोने, चाँदी अथवा ताँबे के गड़वे में भरा होना चाहिये।

स्वच्छं सुशीतलं स्वादु लघु सत्पात्रपूरितम्।
आनीतां सज्जनैर्यत्तत्सलिलं श्रेष्ठमुच्यते।। (वीरमित्रो. पू. प्र. पृ. 36)

अभ्यंग से पूर्व पंचामृत के घटकों से क्रमशः प्रतिमा या लिंग को स्नान कराया जाता है। या स्वयं पंचामृत से स्नान कराया जाता है। पंचामृत के घटक हैं- गाय के दूध, दही, घी तथा शर्करा एवं मधु। प्रतिमा को दूध से मधुपर्यन्त द्रव्यों से क्रमशः स्नान करावें।

गव्यमाज्यं दधि क्षीरं माक्षिकं शर्करान्वितम्।
एकत्र मिलितं ज्ञेयं दिव्यं पञ्चामृतं परम्।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 10)

पंचामृत में पाँचों वस्तुएँ मिली होती हैं। अतः केवल पंचामृत से भी स्नान कराया जा सकता है। इन पाँचों वस्तुओं के अभाव में केवल दूध के स्नान से भी काम चल जाता है।

मधुदध्नामलाभे तु घृतस्य च नराधिप।
क्षीरस्नानेन चैकेन सर्वं संपूर्णतां व्रजेत्।। (आचारेन्दुः पृ. 148)

भगवान् शिव(लिंग) को पंचामृत आदि के अतिरिक्त नारियल के जल तथा पंचगव्य आदि से भी स्नान का विधान है। कपिला गाय के पंचगव्य में कुशोदक मिलाकर मंत्रों द्वारा स्नान ब्राह्मस्नान कहलाता है। एक बार भी लिंग को ब्राह्मस्नान करा दिया जाय तो व्यक्ति पापों से छूटकर रुद्रलोक को प्राप्त करता है।

कपिलापञ्चगव्येन कुशवारियुतेन च।
स्नापयेन्मन्त्रपूतेन ब्राह्मं स्नानं तदुच्यते।।
एकाहमपि यो लिङ्गे ब्राह्मं स्नानं समाचरेत्।
विधूय सर्वपापानि रुद्रलोके महीयते।।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 15 तथा वीरमि. पू. प्र. पृ. 205 में कालिकापुराण का वचन)

पंचगव्य को ताम्रपात्र में रखकर प्रयोग करना चाहिये। ताँबे, लाल, सफेद, काली और नीले रंग की गाय के क्रमशः मूत्र, गोबर, दूध, दही, घी तथा कुश के जल को मंत्रों द्वारा निश्चित अनुपात में मिलाने पर कुशोदक-युक्त पंचगव्य तैयार होता है। गायत्री मन्त्र(ॐ **भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।** यजुर्वे. 36/3) से ताम्रवर्णी गाय का मूत्र 8 भाग, 'गन्धद्वारां०' मन्त्र(ॐ **गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्। ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम्।।**) से लाल गौ का गोबर 16 भाग, 'आप्यायस्व०' मन्त्र(ॐ **आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः**

सोम वृष्ण्यम्। भवा वाजस्य सङ्गथे।। यजुर्वे. 12/112) से सफेद गौ का दूध 12 भाग, 'दधिक्राव्णो०' मन्त्र(ॐ **दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः। सुरभि नो मुखा करत्प्रण आयूँषि तारिषत्।।** य. वेद 23/32) से काली गाय का दही 10 भाग और 'तेजोऽसि शुक्रं०' मन्त्र(ॐ **तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियन्देवानामनाधृष्टन्देवयजनमसि।** यजु. 22/1) से नीली गौ का घी 8 भाग तथा 'देवस्यत्वा०' मन्त्र(ॐ**देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्याम्पूष्णो हस्ताभ्याम्।** यजुर्वे. 1/10) से कुशोदक मिलाने पर कुशोदक युक्त पंचगव्य[1] बनता है(हनुमान् शर्मा, व्रतपरिचय पृ. 21-22 तथा अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 80)। अगर उपर्युक्त रंगों की गायें उपलब्ध न हों तो कपिला गाय से ही सभी पदार्थों को प्राप्त करना चाहिये।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
ताम्रारुणश्वेतकृष्णनीलानामाहरेद् गवाम्।
अष्ट षोडश अर्कांशा दश अष्ट क्रमेण च।
गायत्र्या गन्धद्वारां च आप्यायदधिक्रावणः।
तेजोऽसिशुक्रमन्त्रैश्च पञ्चगव्यमकारयेत्।। (व्रत-परिचय पृ. 21-22)

पंचामृत स्नान के बाद अभ्यंग करें। तदनन्तर अक्षत-गन्ध-पुष्पयुक्त[2] शुद्ध जल से स्नान करायें। कहीं-कहीं पर अभ्यंग एवं स्नान के बाद पंचामृतस्नान कराने को कहा गया है। परन्तु यहाँ ध्यान रखने की बात है कि स्नानादि पूजा के उपचार कपड़े आदि पर अंकित चित्र, यन्त्र अथवा वस्त्रधारी मूर्तियों पर संभव नहीं होते। ऐसी मूर्तियाँ या यन्त्रों के गंदे हो जाने पर पर्व के दिन धोये जाने चाहिये।

---

1. पंचगव्य के बारे में अन्य मत भी पाये जाते हैं जैसे पराशरस्मृति के ग्यारहवें अध्याय में कहा गया है कि-
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्। निर्दिष्टं पञ्चगव्यं च पवित्रं पापशोधनम्।।
गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम्। पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया गृह्यते दधि।।
कपिलाया घृतं ग्राह्यं सर्वं कापिलमेव वा। मूत्रमेकपलं दद्यादङ्गुष्ठार्द्धं तु गोमयम्।।
क्षीरं सप्तपलं दद्याद्दधि त्रिपलमुच्यते। घृतमेकपलं दद्यात् पलमेकं कुशोदकम्।।
गायत्र्याऽऽदाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्। आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णस्तथा दधि।।
तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम्।
(संक्षिप्त शिवपुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर पृ. 633-634 पर पराशर स्मृति का वचन)
अर्थात् पंचगव्य में कालीगाय का मूत्र, सफेद गौ का गोबर, ताँबे के रंग की गौ का दूध, लाल गौ का दही और कपिला गौ का घी अथवा कपिला गौ का ही गोमूत्र आदि पाँचों वस्तु लेकर मिलाये। एक पल गौ मूत्र, आधे अँगूठे के बराबर गोबर, सातपल दूध, तीन पल दही, एक पल घी और एक पल कुशा का जल ग्रहण करना चाहिये।
2. आचारेन्दुः पृ. 149

प्रतिमापट्टयन्त्राणां नित्यं स्नानं न कारयेत्।
कारयेत्पर्वदिवसे यदा वा मलधारणम्।।

(आचारेन्दुः पृ. 149, धर्मसिन्धुः पृ. 624 तथा निर्णयसिंधुः पृ. 681)

महास्नान या महाभिषेक के लिये शंख का प्रयोग करना अच्छा होता है पर शिव एवं सूर्यदेव के महाभिषेक में इसका प्रयोग न करें।

महाभिषेकं सर्वत्र शङ्खेनैव प्रकल्पयेत्।
सर्वत्रैव प्रशस्तोऽब्जः शिवसूर्यार्चनं विना।। (आचारेन्दुः पृ. 149)

वहीं पर आगे कहा गया है कि भगवान् शंकर के अभिषेक में सींग, विष्णु में शंख, सूर्य एवं गणेश में ताम्र और देवी में सुवर्ण-पात्र का प्रयोग करें।

शिवं गवयशृङ्गेण केशवं शङ्खवारिणा।
विघ्नार्कौ ताम्रपात्रेण स्वर्णेन जगदम्बिकाम्।। (आचारेन्दुः पृ. 149)

ताँबे की मूर्ति के लिये भी गव्याभिषेक का निषेध नहीं किया गया है। षट्त्रिंश के हवाले से 'आचारेन्दुः' में कहा गया है कि-

स्नानतर्पणदानेषु ताम्रे गव्यं न दुष्यति। (आचारेन्दुः पृ. 149)

'धर्मसिन्धुः' में कहा गया है कि पच्चीस पल का अभ्यंग शिवलिंग में करें। शंकरजी को कोल्हु के पेरे हुए तेल से नहलावें। सौ पल तेल से स्नान और पच्चीस पल तेल से अभ्यंग करावें। दो हजार पल जल से महास्नान करावें। उसके बाद क्रम से दूध, दही, घी, मधु और शक्कर से स्नान करावें। भक्तिपूर्वक शंकर का सौ पल घृत, दूध, दही और मधु से एवं डेढ़ हजार पल गन्ने के रस से तथा गरम एवं ठढे जल से स्नान करावें। कुछ लोग कहते हैं कि दूध आदि पाँचों के सम भाग से स्नान करावें।

पञ्चविंशत्पलं लिङ्गेष्वभ्यङ्गं कारयेदथ।
स्नापयेत्तिलतैलैश्च करयन्त्रोद्भवैः शिवम्।।
स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यङ्गः पञ्चविंशतिः।
पलानां द्विसहस्रेण महास्नानं जलेन तत्।।
पयोदधिघृतक्षौद्रशर्कराद्यैस्ततः क्रमात्।
शिवस्य सर्पिषा स्नानं प्रोक्तं पलशतेन वै।।
तावता मधुना चैव दध्ना च पयसापि च।
पलसार्धसहस्रेण रसेनैवैक्षवेण च।।
भक्त्या चोष्णोदकैः शीतोदकैः संस्नापयेच्छिवम्।
स्नापयेत्केचिदूचुश्च क्षीराद्यैः पञ्चभिः समैः।। (धर्मसिन्धुः पृ. 630-631)

'निर्णयसिन्धुः' एवं 'अनुष्ठानप्रकाशः' में महास्नान के सन्दर्भ में हेमाद्रि के हवाले से कहा गया है कि-

हेमाद्रौशिवधर्मे– स्नानं पलशतं ज्ञेयमभ्यङ्गं पञ्चविंशतिः।
पलानां द्वे सहस्रे तु महास्नानं प्रकीर्त्तितम्।।

(निर्णयसिन्धुः पृ. 696, अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 15)

अर्थात्– हेमाद्रि में शिवधर्म का वचन है कि – स्नान सौ पल से, अभ्यंग पच्चीस पल से तथा महास्नान दो हजार पल से होता है।

वहीं पर आगे कहा गया है कि लिंग में पच्चीस पल से अभ्यंग करें। तदनन्तर सौ–सौ पल घी, मधु, दधि, दूध से स्नान करावें तथा डेढ़ हजार पल ईख(गन्ने) के रस से स्नान करावें। फिर गरम जल से स्नान करावें।(निर्णयसिन्धुः पृ. 696)

स्नान अथवा महास्नान[1] के दौरान चारों(अर्थात् सभी) प्रकार के वाद्यों का घोष तथा उच्च स्वर से मंगलगीत या स्तुतिपाठ अथवा अभिषेक के मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिये। वाद्यों के अभाव में पूजाकाल के दौरान सदैव घण्टा बजाना चाहिये क्योंकि घंटा सर्ववाद्यमयी ध्वनि पैदा करता है।

वादित्रनिनदैरुच्चैर्गीतमङ्गलसंस्तवैः।
यः स्नापयति देवेशं जीवन्मुक्तो भवेद्धि सः।।
वादित्राणामभावे तु पूजाकाले च सर्वदा।
घण्टाशब्दो नरैः कार्यः सर्ववाद्यमयी यतः।।

(आचारेन्दुः पृ. 150 तथा वीरमि. पू. प्र. पृ 36–37 पर स्कंदपुराण का वचन तथा अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 15)

परन्तु शिवजी के मन्दिर में झल्लक(काँशे की करताल या झाँझ), सूर्य के मन्दिर में शंख, दुर्गा के मन्दिर में वंशी और मधूरी(यह मुँह से फूककर बजायी जाती है या शुषिरवाद्य–छिद्रवाला वाद्यविशेष) नहीं बजाना चाहिये। ब्रह्मा के मन्दिर में ढाक(नगाड़ा) और लक्ष्मी के मन्दिर में घंटा नहीं बजाना चाहिये।(निर्णयसिन्धुः पृ. 693)

शिवागारे झल्लकं च सूर्यागारे च शङ्खकम्।
दुर्गागारे वंशवाद्यं मधूरीं च न वादयेत्।।

(निर्णयसिन्धुः पृ. 693 में योगिनी–तन्त्र का वचन तथा अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 15)

स्नान कराने के बाद गीली प्रतिमा को वस्त्र से पोछकर सुखा देना चाहिये। ऐसा करने से जीवन के अर्जित पापों का मार्जन हो जाता है।

देवं स्नानार्द्रगात्रं तु वस्त्रेण परिमार्जयेत्।
तस्य जन्मार्जितस्यापि भवेत्पापस्य मार्जनम्।। (अचारेन्दुः पृ. 150)

---

1. अनुष्ठानप्रकाशः में कहा गया है कि– स्नान, धूप, नैवेद्य, भूषण तथा नीराजन के साथ घंटानाद करना चाहिये।
स्नाने धूपे तथा दीपे नैवेद्ये भूषणे तथा।
घण्टानादं प्रकुर्वीत तथा नीराजनेऽपि च।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 15 में जयसिंहकल्पद्रुम का वचन)

वस्त्र एवं यज्ञोपवीत आदि

देवमूर्ति को समर्पित किये जानेवाले वस्त्र रेशमी, सूती अथवा ऊनी आदि हो सकते हैं। वस्त्र देखने में सुन्दर, सूक्ष्म(बारीक), नया, सघन(बुनाईवाला) तथा न्यायपूर्वक(जैसे उत्तम तरीके से अर्जित धन से) लाया गया होना चाहिये।

दुकूलपट्टकौशेयकार्पासराङ्कवादिभिः।
वासोभिः पूजयेद्देवं सुशुभ्रैरात्मनः प्रियैः।। (वीरमि. पू. प्र. पृ. 37 में अग्निपुराण का वचन)
नेत्रप्रियाणि सूक्ष्माणि नूतनानि घनानि च।
न्यायागतानि वस्त्राणि प्रशस्तानि भवन्ति हि।। (वीरमि. पू. प्र. पृ. 37)

वस्त्र को चूहों द्वारा कुतरा हुआ, जला हुआ, जीर्ण-शीर्ण, कीड़ों द्वारा खाया हुआ, स्थूल, फटा हुआ तथा दूसरों द्वारा धारण किया हुआ नहीं होना चाहिये।

आखुदष्टानि दग्धानि जीर्णान्यन्यैर्धृतानि च।
कृमिदष्टानि शीर्णानि स्थूलान्युपहतानि च।। (वीरमि. पू. प्र. पृ. 37)

अर्पित किया जानेवाला वस्त्र किसी दूसरे देवता द्वारा भी धारण नहीं किया हुआ होना चाहिये। वह वस्त्र दुष्कर्म के लिये भी प्रयुक्त किया गया न हो। पुनः पूर्णतया नीले रंग का तथा बिना धुला हुआ नवीन वस्त्र भी अर्पित नहीं करना चाहिये। परन्तु ऊन तथा रेशम का वस्त्र नीला हो सकता है।

नीलीरञ्जितवस्त्रं यो मर्त्यो मह्यं निवेदयेत्।
नवमक्षालितं चैव स चिरं रौरवं वसेत्।।
उर्णयां पट्टवस्त्रे वा नीलीरागो न दुष्यति।।

(वीरमि. पू. प्र. पृ. 38 तथा आचारेन्दुः पृ. 151)

वस्त्र के रंगों के बारे में कहा गया है कि रक्त एवं पीत वर्ण के रेशमी वस्त्र क्रमशः देवी एवं भगवान् विष्णु के लिये और लाल रंग का वल्कल वस्त्र भगवान् शिव के लिये उत्तम होता है। कपास के चित्रित वस्त्र सभी देवों को प्रिय हैं। श्रीविष्णु को पूर्णरूप से रक्तवर्ण तथा शिवजी के लिये पूर्णरूपेण नीला वस्त्र वर्जित है। यों तो पूर्णरूपेण नीला वस्त्र सर्वत्र वर्जित है परन्तु नीले के साथ अन्य रंगों से युक्त वस्त्र ग्राह्य हैं।(आचारेन्दुः पृ. 150)

आचारेन्दुः में आगे मन्त्रमहोदधि के हवाले से कहा गया है कि-

पीतं विष्णौ सितं शंभौ रक्तं विघ्नार्कशक्तिषु।
सच्छिद्रं मलिनं जीर्णं त्यजेत्तैलादिदूषितम्।।[1] (पृ. 150)

1. अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 15 में भी 'जयसिंहकल्पद्रुम' के हवाले से कहा गया है कि-

पीतकौशेयवसनं विष्णुप्रीत्यै प्रकीर्तितम्।
रक्तं शक्त्यर्कविघ्नानां शिवस्य च सितं प्रियम्।।
मलहीनं तथाऽच्छिद्रं क्षौमं कार्पासमेव वा।।

अर्थात्- पीला वस्त्र विष्णु को, श्वेत शिवजी को, लाल गणेश, सूर्य और शक्ति को अर्पित करना चाहिये, जबकि छिद्रयुक्त, गन्दा, जर्जर एवं तेल आदि से दूषित वस्त्र को त्याग देना चाहिये।

वस्त्र बारह अंगुल से कम नहीं होना चाहिये तथा जोड़ा होना चाहिये। धुले वस्त्र पर पानी छिड़कनेमात्र से शुद्ध हो जाता है। अर्थात् उसी वस्त्र को पानी छिड़क कर बार-बार प्रयोग किया जा सकता है। स्वर्ण एवं रत्नजटित वस्त्र निर्माल्य(बासी) नहीं होते।

वस्त्रमभ्युक्षणाच्छुध्येदपरं तु दिने दिने।
निर्माल्यं न भवेद्वस्त्रस्वर्णरत्नविभूषणम्।। (आचारेन्दुः पृ. 150)

वस्त्र के बाद यज्ञोपवीत अर्पण करना चाहिये। तीन धागोंवाले सफेद या पीले रंग के यज्ञोपवीत अर्पित करने चाहिये। यज्ञोपवीत पट्टसूत्रादि से निर्मित होना चाहिये।

त्रिवृतं शुक्लपीतं वा पट्टसूत्रादिनिर्मितम्।
दत्त्वोपवीतं रुद्राय भवेद्वेदाङ्गपारगः।। (आचारेन्दुः पृ. 151)

यज्ञोपवीत के बाद अलंकार या आभूषण अर्पित करना चाहिये। आभूषण स्वर्ण निर्मित हों और उनमें मोती आदि रत्न जड़े हों।

स्वशक्त्या देवदेवेशं भूषणैर्भूषयन्ति ये।
हेमजै रत्नजैः शुभ्रैर्मणिजैश्च सुशोभितैः।।

(वीरमि. पू. प्र. पृ. 38 में नन्दीपुराण का वचन)

अलग-अलग ग्रन्थों में नाना प्रकार के आभूषणों की चर्चा की गयी है। अलंकार में बर्तन जैसे घंटा, चामर, पानपात्र आदि नहीं आते। पहननेवाले गहने सोने वा चाँदी के होने चाहिये जबकि पात्र एवं उपकरण लोहे को छोड़कर अन्य धातु के होने चाहिये। ताँबे का पात्र सबसे अच्छा माना गया है। ताँबे के अर्घ्यपात्र को सोने से भी उत्तम माना गया है। ताँबे में देवों का निवास होता है और वह देवों की प्रसन्नता का हेतु है। अत: दोषों के प्रतिकार हेतु ताँबे का ही प्रयोग करना चाहिये।

ताम्रे देवाः प्रमोदन्ते ताम्रे देवाः सदा स्थिताः।
सर्वदोषप्रतीकारं तस्मात्ताम्रं प्रयोजयेत्।। (आचारेन्दुः पृ. 151)

गन्ध

गन्ध-द्रव्य अनेक प्रकार के होते हैं। जैसे- चन्दन, अगर तथा कर्पूर आदि। देवता को गन्ध अर्पित करते समय विहित सभी गंध-द्रव्यों को एक में मिला देना चाहिये। उस सम्मिलित गन्ध-द्रव्य का परिमाण लगभग एक पल हो। ग्रन्थों में नाना प्रकार के गन्ध-द्रव्यों की चर्चा मिलती है। यदि अन्य गन्ध-द्रव्य उपलब्ध न हों तो चन्दन देना ही पर्याप्त होगा।

सर्वेषु गन्धजातेषु प्रशस्तो मलयोद्भवः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन दद्यान्मलयजं सदा।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 11)

अर्थात्- सभी गन्ध-द्रव्यों में चन्दन श्रेष्ठ होता है, इसलिये प्रयत्नपूर्वक चन्दन को सदा अर्पित करना चाहिये।

परन्तु 'पद्मपुराण' के हवाले से कहा गया है कि-

गन्धेभ्यश्चन्दनं श्रेष्ठं(पुण्यं) चन्दनादगुरुर्वरः।
कृष्णागुरुस्ततः श्रेष्ठः कुङ्कुमं तु ततो वरम्।।

(वीरमि. पू. प्र. पृ. 39 तथा आचारेन्दुः पृ. 153)

'पद्मपुराण' का हवाला देकर वीरमित्रोदयः पूजाप्रकाशः में आगे कहा गया है कि-

सर्वेषामपि देवानां तुलसीकाष्ठचन्दनम्।
पितॄणां च विशेषेण सदाभीष्टं हरेर्यथा।। (पृ. 41)

अर्थात्-तुलसी एवं चन्दन सभी देवों के लिये अभीष्ट है परन्तु पितृगणों तथा हरि के लिये सदा विशेषरूप से प्रिय है।

'आचारेन्दुः' पृ. 152 तथा 'वीरमित्रोदयः पूजाप्रकाशः' पृ. 39 में कहा गया है कि कपूर, चन्दन, कस्तूरी और कुंकुम बराबर अंश में मिलाने पर सभी देवों के लिये गन्ध तैयार हो जाता है।

कर्पूरं चन्दनं दर्पः कुङ्कुमं च समांशकम्।
सर्वगन्धमिति प्रोक्तं समस्तसुरवल्लभम्।।

वहीं पर वीरमित्रोदयः में यह भी कहा गया है कि दो भाग कस्तूरी, चार भाग चन्दन, तीन भाग कुंकुम तथा चार भाग कपूर मिलाने पर भी सभी देवों के लिये गन्ध तैयार हो जाता है।

विभिन्न देवताओं के लिये भी अलग-अलग गन्धद्रव्यों का उल्लेख मिलता है। जैसे कृष्ण अगुरु, कपूर एवं चन्दन से बना गंध विष्णु, कामाख्या एवं भैरव को तथा कुंकुम, अगरु, कस्तूरी एवं कपूर से बना गंध त्रिपुरा, चण्डी एवं शिवजी को प्रिय है।

कृष्णागुरुः सकर्पूरः सहितो मलयोद्भवैः।
वैष्णवप्रीतिदो गन्धः कामाख्यायाश्च भैरवे।।
कुङ्कुमागुरुकस्तूरीचन्द्रभागैः समीकृतैः।
त्रिपुराप्रीतिदो गन्धस्तथा चण्ड्याश्च शम्भुना।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 11)

तन्त्रग्रन्थों में शक्ति, विष्णु एवं शिव के लिये अलग-अलग प्रकार के अष्टगंधों की चर्चा की गयी है। चन्दन, अगुरु, कपूर, कचूर, कुंकुम, गोरोचन, जटामांसी तथा रक्तचन्दन- ये शक्ति के अष्टगन्ध जाने जाते हैं। चन्दन, अगुरु, ह्रीवेर, कुष्ठ, कुंकुम, उशीर, जटामांसी और मुर विष्णु के अष्टगन्ध जाने जाते हैं तथा चन्दन, अगुरु, कपूर, तमाल, जल, कुंकुम, कुशीत एवं कुष्ठ शिव के अष्टगन्ध जाने जाते हैं।

चन्दनागुरुकर्पूरचौरकुङ्कुमरोचनाः।

जटामांसीकपियुताः शक्तेर्गन्धाष्टकं विदुः।।
चन्दनागुरुह्रीवेरकुष्ठकुङ्कुमसेव्यकाः।
जटामांसी मुरमिति विष्णोर्गन्धाष्टकं विदुः।।
चन्दनागुरुकर्पूरतमालजलकुङ्कुमम्।
कुशीतं कुष्ठसंयुक्तं शैवं गन्धाष्टकं विदुः।।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 11 तथा आचारेन्दुः पृ. 152 पर शारदातिलक तन्त्र का वचन)

शान्ति एवं पुष्टि कार्य के लिये सदैव यक्षकदर्म को गन्ध के रूप में प्रयोग करना चाहिए।

शान्तिके पौष्टिके नित्ये गन्धः स्याद्यक्षकर्दमः। (आचारेन्दुः पृ.152)

यक्षकर्दम कई तरह से बनता है। यहाँ पर 'आचारेन्दुः' में वर्णित विधि को बताया जा रहा है। इसके अन्तर्गत तीन भाग चन्दन, तीन भाग कुंकुम, डेढ़ भाग कर्पूर, डेढ़ भाग जल तथा एक भाग कस्तूरी मिला होता है।

त्रिपलं चन्दनं प्रोक्तं कुङ्कुमं तत्समं स्मृतम्।।
तदर्धं कर्पुरं ज्ञेयं घनसारश्च तत्समः।
पलेनैकेन कस्तूरीमेलनाद्यक्षकर्दमः।।

(आचारेन्दुः पृ. 152 तथा वीरमि. पू. प्र. पृ. 40)

चन्दन या गंधद्रव्य को शंख या शंखपात्र में रखकर देना उत्तम होता है। परन्तु इसे किसी भी हालत में ताम्रपात्र में नहीं रखना चाहिये। चन्दन को पात्र में रखकर कनिष्ठा अँगुली से मन्त्र पढ़ते हुए देना चाहिये। अर्थात् घिसे चन्दन को बिना पात्र में रखे प्रयोग नहीं करना चाहिये।

विलेपयति देवेशं शङ्खे कृत्वा तु चन्दनम्।
शङ्खपात्रस्थितं गन्धं मन्त्रैर्दद्यात्कनिष्ठया।
हस्ते धृतानि पुष्पाणि ताम्रपात्रे च चन्दनम्।
गङ्गोदकं चर्मपात्रे निषिद्धं सर्वकर्मसु।। (आचारेन्दुः पृ. 153)

अर्थात्- हाथ में रखा हुआ पुष्प, ताम्रपात्र में चन्दन(अर्थात् गन्धद्रव्य) तथा चर्मपात्र में रखा गंगाजल सभी कर्मों में निषिद्ध है।

ऊपर कहा गया है कि कनिष्ठा अँगुली से चन्दन अर्पित करना चाहिये। परन्तु कहीं-कहीं पर गंधदान के प्रसंग में कहा गया है कि अनामिका द्वारा देवताओं तथा ऋषियों के लिये, तर्जनी से पितृगणों के लिये तथा मध्यमा से स्वयं के लिये गंधद्रव्य का प्रयोग करना चाहिये।

अनामिक्या च देवस्य ऋषीणां च तथैव च।
गन्धानुलेपनं कार्यं प्रयत्नेन विशेषतः।।
पितॄणामर्पयेद्गन्धं तर्जन्या च सदैव हि।

तथैव मध्यमाङ्गुल्याधार्यो गन्धः स्वयं बुधैः।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 11)

पतला चन्दन देवता को अर्पण नहीं करना चाहिये। गाढ़ा, अर्थात् जिसमें जल का अंश अल्पतम हो, चन्दन या गन्धद्रव्य अर्पित करना चाहिये।

द्रवीभूतं घृतं चैव द्रवीभूतं च चन्दनम्।
नार्पयेन्मम तुष्ट्यर्थं घनीभूतं तदर्पयेत्।।

(आचारेन्दुः पृ. 153 में वराहपुराण का कथन)

धूप

गंध के बाद पुष्प निवेदन किया जाता है। पुष्पों की चर्चा आगे की जायगी। पुष्प के बाद धूप दिया जाता है। साधारण तौर पर गुग्गुल और घी के मिश्रण का धूप कांस्यपात्र में दिया जाता है। बृहन्नारदीय पुराण में कहा गया है कि-

शंकरस्याथवा विष्णोर्घृतयुक्तं च गुग्गुलुम्।
दद्याद्भक्त्या नरो यस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते।। (आचारेन्दुः पृ. 165)

ग्रन्थों में नाना प्रकार के धूपों की चर्चा मिलती है। जैसे-

अगरुं चन्दनं मुस्ता सिह्लकं वृषणं तथा।
समभागं तु कर्तव्यं धूपोऽयममृताह्वयः।।

(आचारेन्दुः पृ. 165 में भविष्यपुराण का कथन)

यहाँ पर अगरु या अगुरु, चन्दन, मुस्ता, शिलारस तथा कस्तूरी को बराबर मात्रा में मिलाकर धूप बनाने की बात कही गयी है।

आगे दशांगधूप के बारे में कहा गया है कि-

षड्भागकुष्ठं द्विगुणो गुडश्च लाक्षात्रयं पञ्च नखस्य भागाः।
हरीतकी सर्जरसः समांसी भागैकमेकं त्रिलवं शिलाजम्।।
घनस्य चत्वारि पुरस्य चैको धूपो दशाङ्गः कथितो मुनीन्द्रैः।

(आचारेन्दुः पृ. 165 तथा अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 12 पर मदन-रत्न का वचन)

अर्थात्- छः भाग कूट, दो भाग गुड़, तीन भाग लाक्षा, पाँच भाग वज्रनखी, हरड़, राल, जटामांसी, एक-एक भाग, शिलाजीत तीन भाग, कपूर चार भाग तथा गुग्गुल एक भाग मिलाने पर दशांग-धूप तैयार होता है।

स्कंदपुराण में दशांग-धूप की चर्चा करते हुए कहा गया है कि-

जातिपुष्पमथैला च गुग्गुलश्च हरीतकी।
कूटः सर्जरसश्चैव गुडः शैलाच्छडस्था।

नखयुक्तानि चैतानि दशाङ्गो धूप उच्यते।।

(वैष्णवखण्ड - मार्गशीर्ष माहात्म्य 8/27)

अर्थात् - चमेली का फूल, इलायची, गुग्गुल, हर्रे (हरड़), कूट, राल, गुड़, छडछरीला और वज्रनखी नामक गन्धद्रव्य - इनके साथ धूप (काला अगरु) का संयोग होने से इन सबको दशांगधूप कहते हैं।

दशांग - धूप के अतिरिक्त शास्त्रों में षोडशांगधूप की भी चर्चा की गयी है। शास्त्रों में अनेक प्रकार के धूपों की चर्चा करते हुए कहा गया है कि देवताभेद से अथवा मासभेद से धूप अलग - अलग तरह के हो सकते हैं।

धूप निवेदन की विधि यह है कि दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका अँगुली के मध्य बीचवाले पर्वों के अन्तर्गत रखकर अँगूठे के अग्रभाग से पकड़कर देवमूर्ति के सामने दिखायें। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 253)

मध्यमानामिकाङ्गुल्योर्मध्यपर्वणि देशिकः।
अङ्गुष्ठाग्रेण देवेशि धृत्वा धूपं निवेदयेत्।।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 12 में तन्त्रसार का वचन)

धूप को मूर्ति के पैरों से लेकर मुखतक दिखायें (आचारेन्दुः पृ. 165)। धूप को देवता के सामने अथवा बायीं तरफ रखा जा सकता है।

वामतस्तु तथा धूपमग्रे व न तु दक्षिणे।

(आचारेन्दुः पृ. 166 तथा अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 12)

धूपनिवेदन के समय घण्टा बजाना तथा जयकारा लगाना (जय की ध्वनी करना) चाहिये। धूप को जमीन पर, आसन पर अथवा कलश पर नहीं रखना चाहिये। उसे धूपदानी आदि में रखकर दिखाना चाहिये।

ततः समर्प्ययेद्धूपं घण्टावाद्यजयस्वनैः।
न भूमौ वितरेद्धूपं नासने न घटे तथा।।
यथातथाधारगतं कृत्वा तं विनिवेदयेत्।।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 12 में तन्त्रसार का वचन)

आवाहन, अर्घ्य, धूप, पुष्प, नैवेद्य तथा दीप आदि के निवेदन के समय अवश्य ही घंटानाद करना चाहिये।

आवाहनेऽर्घ्ये धूपे च पुष्पे नैवेद्यदीपयोः।
घण्टानादं प्रकुर्वीत विशेषाद्धूपदीपयोः।। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 245)

दीप

भगवान् को दीपक अर्पित करने के फल को बताते हुए कहा गया है कि -

घृतेन दीपं यो दद्याच्छङ्करायाथ विष्णवे।

स मुक्तः सर्वपापेभ्यो गङ्गास्नानफलं लभेत्।।
तिलतैलान्वितं दीपं विष्णोर्वा शङ्करस्य च।
दत्त्वा नरः सर्वकामान् संप्राप्नोति नरोत्तमाः।।

(वीरमि. पू. प्र. पृ. 75 पर स्कंदपुराण का वचन)

अर्थात्- घी के दीपक को भगवान् शिव या विष्णु को अर्पित करनेवाला सभी पापों से मुक्त हो गंगास्नान का फल प्राप्त करता है। तथा तिल के तेलवाले दीपक को अर्पित करने से व्यक्ति की सभी कामनाएँ पूरी होती हैं।

दीपक पीतल, लोहे आदि धातुओं, लकड़ी, मिट्टी, नारियल तथा बाँस से बना उत्तम होता है।

तैजसं दारवं लौहं मार्त्तिक्यं नारिकेलजम्।
तृणध्वजोद्भवं चापि दीपपात्रं प्रशस्यते।।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 13 में कालिकापुराण का वचन)

दीपक या तो घी से या तिल के तेल से जलाना चाहिये। कभी भी घी एवं तेल दोनों को मिलाकर दीप नहीं जलाना चाहिये।

न मिश्रीकृत्य दद्यात्तु दीपं स्नेहे घृतादिकम्।
घृतेन दीपकं नित्यं तिलतैलेन वा पुनः।।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 12 में कालिकापुराण का वचन)

दीपक की बत्ती कमलसूत्र, कुश के रेशे, कपास, फल के रेशे अथवा सन से बनायी जा सकती है।

पद्मसूत्रभवा दर्भगर्भसूत्रभवा तथा।
शाणजा बादरा वाऽपि फलकोशोद्भवा तथा।।
वर्तिका दीपकृत्येषु सदा पञ्चविधा स्मृता।

(आचारेन्दुः पृ. 165 में तृचभास्कर का वचन)

आमतौर से कपास की बत्ती कपूर आदि मिलाकर बनायी जाती है, जिसकी लम्बाई करीब चार अँगुल(अर्थात् न अति बड़ी और न अति छोटी) होती है। बत्ती को दृढ़ होना चाहिये। दीपक के साथ शिलापिष्टिका, जो आरती के समय घुमाया जाता है, का भी उपयोग करना चाहिये। दीप में बत्तियाँ विषम संख्या में(अर्थात् 3, 5 आदि) होती हैं।(आचारेन्दुः पृ. 166 तथा मन्त्रमहोदधिः 22/118)

दीपक को शलाका से जलाना चाहिये। दीप को दीप से कभी नहीं जलाना चाहिये। क्योंकि ऐसा करनेवाला रोगी एवं दरिद्र हो जाता है।

दीपेन दीपं प्रज्वाल्य दरिद्री व्याधिमान्भवेत्। (आचारेन्दुः पृ. 166)

घी के दीपक को दाहिनी तरफ तथा तेल के दीपक को बायीं तरफ रखना चाहिये। इसी प्रकार सफेद बत्तियोंवाले दीपक को दाहिनी तरफ तथा रक्तवर्ण की बत्तियोंवाले दीपक को बायीं तरफ

रखना चाहिये। सफेद बत्ती तथा तिल के तेलवाले दीपक को भी दाहिनी तरफ तथा घीवाले लाल बत्ती से युक्त दीप को बायीं तरफ रखना चाहिये। (आचारेन्दुः पृ. 166 तथा मन्त्रमहोदधिः 22/119)

घृतदीपो दक्षिणतस्तैलदीपस्तु वामतः।
सितवर्तियुतो दक्षे वामाङ्गे रक्तवर्तिकः।।

(आचारेन्दुः पृ. 166, अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 13 तथा मन्त्रमहोदधिः पृ. 22/119)

मध्यमा, अनामिका एवं अंगूठे के सहारे दीप को पकड़कर देवता की पूजा करनी चाहिये। देवमूर्ति के नेत्रप्रदेश के चारों ओर दीप को छः बार घुमाना चाहिये।

मध्यमानामिकाङ्गुष्ठैर्धृत्वा दीपं सुपूजितम्।
नेत्र प्रदेशे षड्वारं भ्रामयन्देवमर्चयेत्।। (आचारेन्दुः पृ. 166)
मध्यमानामिकाभ्यां तु मध्ये पर्वणि देशिकः।
अङ्गुष्ठाग्रेण देवेशि धृत्वा दीपं निवेदयेत्।। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 253)

देवता के निमित्त अर्पित दीप को नहीं बुझाना चाहिये। दीप बुझानेवाले पुरुष का वंश नहीं चलता। इसी प्रकार स्त्रियों को कुष्माण्डछेदन नहीं करना चाहिये।

दीपप्रलोपनं पुंसां कूष्माण्डच्छेदनं स्त्रियाः।
अचिरेणैव कालेन वंशच्छेदो भवेद्ध्रुवम्।। (आचारेन्दुः पृ. 167)

नैवेद्य

नैवेद्य में एक पुरुष के भोजनयोग्य वस्तु होनी चाहिये जिसमें चर्व्य, चोष्य, लेह्य और पेय आदि पाँचों प्रकार की सामग्री होनी चाहिये। जिस-जिस देवता को जो प्रिय हो उसे नैवेद्य में देना चाहिये। जैसे गणेश एवं सूर्य को लड्डु। नैवेद्य में पका हुआ अन्न तथा दूध, दही, घी, शक्कर से निर्मित पदार्थ, फल तथा मूल आदि अर्पित करना चाहिये। 56 प्रकार के पकवान नैवेद्य के अन्तर्गत आते हैं।

निवेदनीयं यद्द्रव्यं प्रशस्तं प्रयतं तथा।
तद्भक्ष्यार्हं पञ्चविधं नैवेद्यमिति कथ्यते।।
भक्ष्यं भोज्य च लेह्यं च पेयं चूष्यं च पञ्चमम्।
सर्वत्र चैतन्नैवेद्यमाराध्यास्यै निवेदयेत्।।[1] (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 13)

'नैवेद्य को किस प्रकार के पात्र में निवेदन करना चाहिये' इसकी चर्चा करते हुए कहा गया है कि–

तैजसेषु च पात्रेषु सौवर्णे राजते तथा।
ताम्रे वा प्रस्तरे वापि पद्मपत्रेऽथ वा पुनः।।

---

1. इन्हीं श्लोकों में थोड़े अन्तर के साथ आचारेन्दुः (पृ. 167) में तृचभास्कर का मत दिया गया है।

यज्ञदारुमये वापि नैवेद्यं स्थापयेद्बुधः।[1] (अनुष्ठानप्रकाशः पृ 13 तथा पुरश्चर्यार्णव पृ 248)

अर्थात्- धातु के पात्रों में सोना, चाँदी तथा ताँबा का प्रयोग करना चाहिये। इनके अभाव में पत्थर, कमल के पत्ते अथवा यज्ञ में प्रयुक्त होनेवाली लकड़ियों के पात्र प्रयोग करना चाहिये।

नैवेद्य के अभाव में फल, मूल अथवा जल अर्पण करना चाहिये। फल के अभाव में तृण, गुल्म या ओषधि अर्पित करें। ओषधि के अभाव में केवल जल निवेदन करें। जल के अभाव में सभी वस्तुओं की मानसिक कल्पना करें।

संस्कृतं चान्नमाज्याद्यैर्दधिक्षीरमधूनि च।।
फलमूलव्यञ्जनादि मोदकं च निवेदयेत्।
फलानामप्यभावे तु तृणगुल्मौषधीरपि।।
ओषधीनामलाभे तु तोयान्यपि निवेदयेत्।
तदलाभे तु सर्वत्र मानसं प्रवरं स्मृतम्।।

(आचारेन्दुः पृ. 167 में बृहन्नारदीय पुराण का वचन)

अनुष्ठानप्रकाशः में भी कहा गया है कि-

नैवेद्यवस्त्वलाभे तु फलानि च निवेदयेत्।
फलानामप्यलाभे तु तोयान्यपि निवेदयेत्।। (पृ. 13)

निषिद्ध नैवेद्यों में भेड़, बकरी और भैंस के दूध, दही एवं घी आते हैं। इसके अतिरिक्त सभी प्रकार के मांस, कुसुम्भ, प्याज, शतपुष्प तथा लहसुन आदि आते हैं। इसी प्रकार बासी पदार्थ भी आते हैं। अत्यधिक पका हुआ या बिना पका हुआ तथा ऐसा भोजन जो छः प्रकार के दोषों[2] में से किसी भी दोष से ग्रस्त हो, नैवेद्य में अर्पित नहीं करना चाहिये। मिष्ठान्न आदि जो अधिक बासी हों, फल-मूल आदि जो सड़े-गले अथवा कृमि-युक्त हों ऐसे पदार्थों को नहीं अर्पित करना चाहिये। शुद्ध, सात्त्विक, स्वच्छ बर्तन में पवित्रतापूर्वक लाये द्रव्य को ही नैवेद्य में अर्पित करें। अभक्ष्य पदार्थों को नैवेद्य में अर्पित न करें।(वीरमि. पू. प्र. पृ. 80-81)

पुष्पसहित हाथों से नैवेद्यपात्र को तीन बार उठाते हुए उपयुक्त मन्त्रों को पढ़ते हुए नैवेद्य अर्पित करें।(मन्त्रमहोदधिः 22/130)

---

1. इसी तरह के श्लोक वीरमि. पू. प्र. के पृ. 81 पर भी पाये जाते हैं।

2. आचारेन्दुः पृ. 288 में ये दोष इस प्रकार बताये गये हैं- (1) जाति-दुष्ट जैसे लहसुन, प्याज आदि (2) क्रिया-दुष्ट जैसे पतितों, दुष्टों, रजस्वला अथवा अशुद्धि-युक्त लोगों द्वारा देखा गया भोजन (3) काल-दुष्ट जैसे काफी दिन से रखी दही आदि वस्तु अथवा बासी वस्तु (4 एवं 5) आश्रय एवं संसर्ग दुष्ट जैसे अपवित्र जगह पर जैसे शराबखाना, शौचालय आदि जगहों पर रखी वस्तु तथा शराब, लहसुन आदि गंदी वस्तुओं या व्यक्तियों द्वारा स्पर्श की गयी चीजें अथवा कुत्ते, बिल्ली, कौवा आदि द्वारा उच्छिष्ट वस्तुएँ तथा (6) सहृलेख जैसे बच्चे देनेवाली गाय का 10 दिन से पहले का दूध आदि।

नैवेद्य के उपरान्त पुनः कर्पूर आदि से सुवासित जल को आचमन एवं करमार्जन के लिये प्रस्तुत करें। आचमन के द्रव्यों की पहले ही चर्चा हो चुकी है। आचमन के बाद ताम्बूल अर्पण करें।

ताम्बूल (मुखवास)

पान का अगला हिस्सा और मूल, विशेषतः उसकी शिरा छोड़कर (काटकर) उसे कपूर, इलायची आदि सुगंधित पदार्थ, कत्था, चूना तथा सुपारी आदि के साथ अर्पित करना चाहिये। मगध आदि देश में पैदा होनवाला पान का सफेद पत्ता अच्छा रहता है। कहा गया है कि –

श्वेतपत्रं च चूर्णं च क्रमुकाणां फलानि च।
नारिकेलफलोपेतं मातुलुङ्गसमायुतम्।।
एलालवङ्गकङ्कोलैर्मुखवासं प्रचक्षते।। (आचारेन्दुः पृ. 169)

अर्थात् – सफेद पान का पत्ता, कस्तूरी, (दक्षिण देश में पैदा होनेवाली) सुपारी, नारियल, महालुंग (मातुलुङ्ग), इलायची (एला), लवंग और कङ्कोल मुखवास के लिये उत्तम माने गये है।

आचारेन्दुः में कपूर, नाग, इलायची, लवंग, केशर, जायफल, पनस, नारियल तथा मरीच आदि की उचित मात्रा के साथ पान के पत्ते, सुपारी, कत्था, तथा चूना मिला देने पर ताम्बूल कहा जाता है।

कर्पूरनागरैलालवङ्गकेशरजातीफलपत्रपनसनारिकेलशकलमरीच्यादिकं चेति यथायोग्यं मिलितं पर्णादिचतुष्टयमेव वा ताम्बूलपदवाच्यम्। (पृ. 169)

यह बात ध्यान देने की है कि लोग पान के पत्ते के अग्रभाग एवं उसके मूल की शिरायें एवं डंठल हटाये बिना ही चढ़ा देते हैं। ऐसा करना दोषपूर्ण है। पुनः पान अर्पित करते समय उसमें तम्बाकू (सूर्ती या जर्दा) नहीं मिलाना चाहिये।

मुखवास के उपर्युक्त द्रव्यों के प्राप्त न होने पर उस – उस द्रव्य की मानसिक कल्पना कर लें अथवा कल्पना करते हुए पुष्पों को ही मुखवास के लिये प्रस्तुत करें। अगर ऐसा करना भी संभव न हो तो वहाँ जल का ही प्रयोग कर लें।

एतेषामप्यलाभे तु तत्तद्द्रव्यं स्मरेद्बुधः।।
तत्तद्द्रव्यं तु सङ्कल्प्य पुष्पैर्वापि समर्चयेत्।
अर्चनेषु विहीनं यत्तत्तोयेन प्रकल्पयेत्।। (वीरमि. पू. प्र. पृ. 86)

ताम्बूल समर्पण के बाद पूजा की सफलता के लिये दक्षिणा समर्पित करनी चाहिये। उस समर्पित द्रव्य को मंदिर या ब्राह्मणों को दे देना चाहिये।

देवे दत्त्वा तु ताम्बूलं देवे दत्त्वा तु दक्षिणाम्।
तत्सर्वं ब्राह्मणो दद्यादिति। (आचारेन्दुः पृ. 171)

दक्षिणा के उपरान्त नाना प्रकार के स्तोत्रों का उच्चस्वर में पाठ करना चाहिये। भगवान् शिव से संबंधित अनेक स्तोत्र इस पुस्तक में यथास्थान दिये गये हैं। अपनी रुचि, सामर्थ्य एवं समय के

अनुसार उनमें से कुछ का पाठ करना चाहिये। तदनन्तर नमस्कार-प्रणाम, प्रदक्षिणा, नीराजन(आरती) एवं पुष्पांजलि आदि पूजा के अंगों को करना चाहिये। स्तोत्रों का पाठ सदैव उच्च स्वर से तथा मन्त्रों का जप मानसिक रूप से करना चाहिये। परन्तु स्वलिखित स्तोत्र का पाठ नहीं करना चाहिये।

मनसा यः स्मरेत्स्तोत्रं वचसा वा मनुं जपेत्।
उभयं निष्फलं याति भिन्नभाण्डोदकं यथा।।

(पुरश्चर्यार्णव, संपादक, मुरलीधर झा, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1985, पृ. 541 तथा कर्मठगुरौ, मुकुन्द बल्लभ, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली 1994, पृ. 65)

स्वहस्तलिखितं स्तोत्रं स्वयं घृष्टं च चन्दनम्।
स्वयं च ग्रथिता माला शक्रस्यापि श्रियं हरेत्।।

(वीरमित्रोदयः आह्निकप्रकाशः पृ. 252)

नमस्कार एंव परिक्रमा

सभी देवताओं को तीन बार, पाँच बार अथवा सात बार नमस्कार करना चाहिये।

प्रणामाः सर्वदेवेषु पञ्च सप्त त्रयोऽपि वा। (आचारेन्दुः पृ. 169)

पंचाग एवं अष्टांग प्रणाम ज्यादा प्रसिद्ध हैं। स्त्रियों को पंचाग तथा पुरुषों को अष्टांग प्रणाम करना चाहिये। पुरुष के लिये अष्टांग को उत्तम तथा पंचांग मध्यम माना गया है। दोनों पैर, दोनों हाथ एवं शिर से प्रणाम करना पंचाग कहलाता है। दोनों हाथ, दोनों पैर, दोनों जाँघें, पेट, शिर, मन, वाणी एवं दृष्टि से किया गया प्रणाम अष्टांग कहा जाता है।

दोर्भ्यां पद्भ्यां च जानुभ्यामुरसा शिरसा तथा।
मनसा वचसा दृष्ट्या (भक्त्या) प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरितः।।[1]
पद्भ्यां कराभ्यां शिरसा पञ्चाङ्गा प्रणतिः स्मृता।
अष्टाङ्ग उत्तमः प्रोक्तः पञ्चाङ्गो मध्यमः स्मृतः।।

(वीरमि. पू. प्र. पृ. 88 तथा आचारेन्दुः पृ. 169)

यों तो अनेक ग्रन्थों में भिन्न-भिन्न तरह से अष्टांग एवं पंचांग प्रणामों की परिभाषाएँ दी गयीं हैं। परन्तु उपर्युक्त परिभाषा ही सामान्यतः प्रचलित है।

पंचांग वा अष्टांग प्रणाम पृथ्वी से बार-बार उठ करके ही करना चाहिये। प्रदक्षिणा के उपरान्त किया जानेवाला प्रणाम प्रत्येक प्रदक्षिणा के अन्त में होता है। पंचांग एवं अष्टांग प्रणाम प्रतिमा को देखते हुए मन एवं वाणी से स्तुति करते हुए करना चाहिये। कभी भी एक हाथ से प्रणाम नहीं करना

---

1. 'अनुष्ठानप्रकाशः' तथा 'पुरश्चर्यार्णव' (पृ. 259) में भी अष्टांग प्रणाम की यही परिभाषा दी गयी है।

उरसा शिरसा दृष्ट्या मनसा वचसा तथा।
पद्भ्यां कराभ्यां जानुभ्यां प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 14)

चाहिये। (वीरमि. पू. प्र. पृ. 88 तथा आचारेन्दुः पृ. 171)

प्रदक्षिणा अथवा परिक्रमा इस प्रकार करना चाहिये कि देवता के सामने पीठ कभी न दीखे। अर्थात् परिक्रमा इस प्रकार करें कि मूर्ति की तरफ व्यक्ति का सामनेवाला हिस्सा ही रहे। पीछे का कोई अंग मूर्ति की तरफ न आये।

प्रदक्षिणं न कर्तव्यं पुरतः पृष्ठदर्शनात्।
चक्रवद्भ्रमयेदङ्गं पृष्ठतोऽङ्गं न दर्शयेत्।। (आचारेन्दुः पृ. 171)

प्रदक्षिणा करने के बाद दण्डवत् प्रणाम(अष्टांग) करना चाहिये। देवताओं के भेद से प्रदक्षिणा का भी भेद बताया गया है। चण्डी की एक, सूर्य की सात, गणेश की तीन, विष्णु की चार और शिव की तीन प्रदक्षिणा करनी चाहिये।

एकां चण्ड्यां रवौ सप्त तिस्रो दद्याद्विनायके।
चतस्रो विष्णवे दद्याच्छिवे तिस्रः प्रदक्षिणाः।।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 14 में लिंगार्चनचन्द्रिका का वचन)

'शिवरहस्य' के अनुसार अपनी शक्ति के अनुसार भगवान् शिव की तीन, पाँच, दस, आठ, बारह या इससे अधिक परिक्रमा करनी चाहिये। कभी भी एक प्रदक्षिणा नहीं करनी चाहिये। कम से कम तीन प्रदक्षिणा अवश्य करनी चाहिये। पूजा करने के बाद यदि शिव की प्रदक्षिणा न की जाय तो वह पूजा निष्फल हो जाती है। परन्तु अगर कोई सम्यक रीति से भक्तिपूर्वक प्रदक्षिणामात्र करता है वह मानो शिव की सभी प्रकार की पूजा कर लेता है।

प्रदक्षिणात्रयं कुर्यात्तथा पञ्चदशाथवा।
अष्टौ द्वादश वा कार्य्या ह्यधिका वापि शक्तितः।।
नैकां प्रदक्षिणां कुर्य्यात्साम्बस्य परमात्मनः।
पूजां कृत्वा तु यः शम्भोर्न करोति प्रदक्षिणाम्।
सा पूजा निष्फला तस्य पूजकः स च दाम्भिकः।।
भक्त्या करोति यः सम्यक् केवलं तु प्रदक्षिणाम्।
पूजा सर्वा कृता तेन स सम्यक् शिवपूजकः।।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 14 पर शिवरहस्य का वचन)

जहाँ पर भगवान् शिव की प्रतिमा अथवा लिंग चण्ड, नन्दी तथा सोमसूत्र(चढ़ाया गया पानी निकलने की नाली) के साथ हो तो वहाँ पर प्रदक्षिणा दूसरे तरह से की जाती है। ऐसी स्थिति में शिव की अर्द्ध–प्रदक्षिणा का विधान किया गया है।

एका चण्ड्या रवेः सप्त तिस्रः कार्य्या विनायके।
हरेश्चतस्रः कर्तव्याः शिवस्यार्द्धा प्रदक्षिणा।।
वृषं चण्डं वृषं चैव सोमसूत्रं पुनर्वृषम्।

चण्डं च सोमसूत्रं च पुनश्चण्डं पुनर्वृषम्।।[1] (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 14)

अर्थात्–नन्दी से चण्डतक फिर वापस नंदीतक फिर वहाँ से सोमसूत्र तक जाय। तदनन्तर फिर लौटकर नन्दी के पास आये। उसके बाद वहाँ से चण्ड के समीप होते हुए सोमसूत्र (नाली के दूसरे किनारे) तक जाय। फिर वहाँ से पुनः लौट कर चण्ड के नजदीक से गुजरते हुए नन्दीतक आये। इस प्रकार से शिव की अर्द्धपरिक्रमा करें।

संन्यासी को परिक्रमा दायें तरफ से तथा ब्रह्मचारी को बायें तरफ से शुरू करनी चाहिये। जबकि गृहस्थी शिव की परिक्रमा किसी भी दिशा से कर सकता है। परिक्रमा (अधिकार भेद से) चाहे जिस दिशा से की जाय उसे नाली का उल्लंघन[2] नहीं करना चाहिये।

अपसव्यं यतीनां तु सव्यं तु ब्रह्मचारिणाम्।
सव्यापसव्यं गृहिणामेवं शम्भोः प्रदक्षिणा।
सव्यं व्रजेत्ततोऽसव्यं प्रनालं नैव लङ्घयेत्।।[3] (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 14)

आचारेन्दुः (पृ. 170) में भी प्रदक्षिणा संबंधी उपर्युक्त सभी बातें लिखी हैं। प्रदक्षिणा करते समय मुख से स्तुति का वाचन तथा हृदय में देवता का ध्यान करते रहना चाहिये। प्रदक्षिणा धीरे–धीरे पग बढ़ाते हुए तथा हाथ को स्थिर रखते हुए करें।(आचारेन्दु : पृ. 171)

पदान्तरे पदं न्यस्य करौ चलनवर्जितौ।
स्तुतिर्वाचि हृदि ध्यानं चतुरङ्गंप्रदक्षिणम्।।

(वीरमि. पू. प्र. पृ. 235 तथा आचारेन्दुः पृ. 171)

सोमसूत्र (नाली) के उल्लंघन के अपवाद को बतलाते हुए कहा गया है कि अगर नाली घास, लकड़ी, पत्ते तथा पत्थर आदि से ढकी हो तो उसका उल्लंघन हो सकता है।

तृणैः काष्ठैस्तथा पर्णैः पाषाणैर्वेष्टकादिभिः।
अन्तर्धानं पुनः कृत्वा सोमसूत्रं तु लङ्घयेत्।।

(आचारेन्दुः पृ. 170 में आचारसार का वचन तथा वीरमि. पू. प्र. पृ. 236)

❀❀❀❀❀❀

1. इसी आशय के श्लोक आचारेन्दुः (पृ. 170) तथा वीरमि. पू. प्र. (पृ. 235 आदि) में भी पाये जाते हैं।
2. देवों की प्रतिमा अथवा लिंग पर चढ़ाया गया जल, फल–फूल तथा दीप आदि निर्माल्य कहलाता है। इनमें से किसी भी वस्तु का उल्लंघन नहीं करना चाहिये। प्रतिमा पर चढ़ाया गया जल बह कर फैलने लगता है अतः उसे निकालने के लिए ही नाली बनायी जाती है। इसलिये नाली का उल्लंघन नहीं किया जाता क्योंकि नाली में निर्माल्य का अंश शेष रहता है।
3. वीरमित्रोदयः पूजाप्रकाशः पृ. 235–236 पर भी इसी आशय के श्लोक पाये जाते हैं।

शम्भोः प्रदक्षिणं कुर्वन् सोमसूत्रं न लङ्घयेत्।
अपसव्यं यतिः कुर्यात्सव्यं तु ब्रह्मचारिणः।
सव्यापसव्यं गृहिणो नित्यं शम्भोः प्रदक्षिणम्।।